ध्यान दें:

14

अध्यास कारण विचार

ब्रह्म में अखिल जगत् अध्यसत् है। जगत् ही मिथ्या होता है। जीव अज्ञान के कारण से अपने स्वरूप को नहीं जानता हुआ सुखदु:खादि का अनुभव करता है। ब्रह्म के अज्ञान के कारण ही मिथ्याभूत अन्त: करण के साथ मिथ्या सम्बन्धवश ब्रह्म का जीव भाव हो जाता है। जगत के मिथ्यात्व के जानने के बाद वैराग्य उत्पन्न होता है। जीव भाव के मिथ्यात्व को जानकर के जैसे जीव अपने स्वरूपज्ञान के लिए प्रवर्तित होता है उसके लिए अभ्यास किस प्रकार का होता है यह जानना चाहिए। जैसे ज्वर का कारण जान लेते हैं तो ज्वर के नाश के लिए उपचारों की कल्पना में सरलता आ जाती है। उसी प्रकार अध्यासकारणों को जानने के बाद उनका निरोध सरल हो जाता है। अध्यस्त क्या है तथा सत्य और असत्य क्या है इसके ज्ञान के लिए अध्यस्त के स्वरूप को अच्छे से जानना चाहिए। अध्यस्त वस्तु का वह क्या स्वरूप है जिसमें भारतीय आस्तिक दर्शनो में परस्पर मतविरोध भी होता है। इससे पूर्व पाठ में अध्यासलोचन का प्रयोजन, अध्यास लोचन का लक्षण, अध्यास के भेद, अध्यासत्व, आदि प्रमाण उपस्थापित किये गये हैं। इस पाठ में हम अध्यास कारणों का तथा अध्यस्त वस्तुओं के स्वरूप को तथा उस वस्तु के प्रतिपादन के विषय में भारतीय दर्शनों के जो परस्पर विरुद्धमत है उनका आलोचन करेंगे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर के आप सक्षम होंगे;

- अध्यस्त वस्तुओं की उत्पत्ति तथा उनके प्रकार को जानने में;
- भ्रमज्ञान के स्वरूप को जानने में;
- अध्यास का उपादान तथा निमित्ति कारण जानने में;
- अध्यस्त वस्तुओं के स्वरूप को जानने में;
- सलक्षण सत्ता त्रय को जानने में;
- विवर्त तथा परिणाम के स्वरूप को जानने में;

ध्यान दें:

14.1) अध्यस्तवस्तु उत्पत्ति विचार

यथार्थ ज्ञान को प्रमा कहते हैं, वेदान्त परिभाषा में प्रमा का लक्षण- "अनधिगताबाधितार्थविषयत्वज्ञानत्व कहा गया है"। इस प्रकार से ब्रह्मचैतन्य अखिलप्रपञ्च का उपादान होता है उससे सभी जगह तादात्म्य होने के कारण वर्तमान में सत् दिखता हुआ स्व संसृष्ट जगत् अवभासित होता है। इसलिए अप्पयदीक्षित ने सिद्धान्तलेशसंङ्ग्र में जीवाल्पज्ञत्व के विषय में विवरणमतालोचन काल में कहा है- "ब्रह्मचैतन्यं सर्वोपादनतया सर्वतादात्म्यापन्न सत् स्वसंसृष्ट होने पर सभी को अवभासित करता है, न की जीवचैतन्य"। जीव का अन्त: करण के साथ ही साक्षात् सम्बन्ध होता है बाह्यघटादि के साथ उसका साक्षात् सम्बन्ध नहीं होता है। जब अन्त: करण नयन आदि के द्वारा जाकर के विषयपर्यन्त दीर्घप्रभाकार में परिणित होकर के विषय को प्राप्त करता है तब उसकी विषयाकार वृत्तियों का उदय होता है। वह अन्त: करणवृत्ति विषय चैतन्य के आवरक अज्ञान का अभिभव करती है। उसके द्वारा विषय चैतन्य की अभिव्यक्ति उत्पन्न होती है। उस विषय से ज्ञान होता है।

ज्ञान का ब्रह्मस्वरूपत्व भी वृत्तिधर्म जन्यत्व के ज्ञान में आरोपित होने से ज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा कहा जाता है। प्रकाशात्मयति के द्वारा विवरण मे कहा गया है कि - "ज्ञानावच्छेदकत्व से वृत्ति में ज्ञानत्व उपचार होता है"। जिस प्रकार से विषय प्रत्यक्षनिमित्त चैतन्य तीन प्रकार का चैतन्य कहा जाता है- विषय चैतन्य, प्रमाण चैतन्य, और प्रमातृचैतन्य। घटावच्छिन्न चैतन्य विषयचैतन्य होता है अन्त: करणवृत्यवच्छिन्नचैतन्य प्रमाणचैतन्य होता है तथा अन्त: करणावच्छिन्न चैतन्य प्रमातृचैतन्य होता है। जैसे तालाब का जल छिद्र से निकलकर नालिका के द्वारा केदार में प्रवेश करके केदार के आकार के अनुसार त्रिकोण चतुष्कोण आदि आकार वाला हो जाता है तथा तेज अन्त: करण चक्षु आदि के द्वार निकल कर घटादि विषय देश में जाकर के घटादि विषयाकार में परिणमित हो जाता है। यह परिणाम ही वृत्ति कहलाता है। इस प्रकार से विषयावच्छिन्न चैतन्य तथा प्रमातृचैतन्य दोनों में अभेद होन पर विषय का ज्ञान होता है। विषयावच्छिन्न चैतन्य की चैतन्यस्वरूप से प्रमातृचैतन्य के समान ही सत्ता होती है । इसलिए उन दोनों का एक्य होने के कारण कोई उपपत्ति नहीं होती है। अधिष्ठान की सत्ता ही आरोपितों में होती है। न की आरोपितों की भिन्न सत्ता होती है। विषयादि सकल प्रपञ्च ब्रह्म में अध्यस्त होते हैं। इसलिए सभी जगहों पर ब्रह्म सत्ता ही अनुवर्तित है।

इस प्रकार से शुक्तिरूप आदि के भ्रमस्थल में देशान्तरस्थ रजत का शुक्ति में भान नहीं होता है। उसके असन्निकृष्टत्व के कारण उसकी प्रत्यक्ष विषयता सम्भव नहीं होती है। तो कहते हैं की रजत उत्पादक रजत अवयवों का शुक्ति में अभाव होने से किस प्रकार से प्रातिभासिकरजत की उत्पत्ति होती है तो कहते है कि लोक प्रसिद्ध सामग्री प्रातिभासिक रजत का उत्पादन करती है लेकिन विलक्षण ही सामग्री यहाँ पर अपेक्षित होती है।

इस प्रकार से प्रकाश कारण से चकाचौंध शुक्ति को देखकर के काचकामलादि दोष से दूषित आँख से सामने स्थित शुक्ति के द्रव्य के संसर्ग से यह सामने वाला आकार चकाचौंध वाला है इस प्रकार की कोई अन्त: करण में वृत्ति का जन्म होता है। उसी वृत्ति में यह अवच्छिन्न चैतन्य प्रतिबिम्बित होता है। वहाँ पर तडागोदक न्याय से वृत्ति के निर्गमन से यह शुक्ति रूप समान देश स्थत्व से अवच्छिन्न चैतन्य ही वृत्त्यवच्छिन्न चैतन्य प्रमातृचैतन्य तथा उससे भिन्न होता है । अन्त: करण की वृत्ति के द्वारा यहाँ पर यह सामान्यमात्र रूप विषयी होता है न कि शुक्तिरूपविशेष। वहाँ से प्रमातृचैतन्यभिन्न विषयचैतन्यनिष्ठा शुक्तित्वप्रकारिका अविद्या चकाचौंध आदि सादृश्य के दर्शन के कारण से उद्बोधित रजत संस्कार सामग्री सहित तथा काचकामालादि दोष सहित रजतरूप अर्थ के कारण से रजतज्ञान भास के द्वारा। परिणाम से प्राप्त होता है।

ध्यान दें:

इन्द्रिय दोष सादृश्य संस्कारादि सामग्री सहित अविद्या एक ही प्रकार से रजत के रूप में कभी रंग के रूप में परिणमित होती है। ऐसा कहा जाता है कि जो पुरुषीय अविद्या जिस प्रकार के संस्कार के साथ होती है, वह उस पुरुष के उसी प्रकार में ही परिणमित होती है न की अन्याकर में। यहाँ पर इष्टसिद्धिकार कहतें है कि रंङ्गस्याज्ञानं भ्रमस्तस्य भ्रान्तः सम्यक् च वेत्ति सः (जिसका ज्ञान ही भ्रम है उसका ज्ञान करने वाला अच्छे से जानता हुआ भी भ्रान्त हो जाता है) इसलिए एक ही शुक्ति में किसी को रजत भ्रम तो किसी को रङ्ग का भी भ्रम हो जाता है।

इस प्रकार से शुद्ध ब्रह्म में घटादि व्यावहारिक वस्तु अध्यास में अविद्या ही दोषत्व से हेतु होती है। शुक्तिरूप्य आदि स्थलों में तो काचकामलादि आदि दोष के रूप में अङ्गीकार किये जाते हैं। इसलिए आगन्तुक दोषजन्यत्व प्रातिभासिकत्व में नियामक होता है। स्वप्न में रथ आदि का आगन्तुक निद्रादि दोषजन्यत्व से प्रातिभासिकत्व होता है। यह ही धर्म्यध्यास कहलाता है।

धर्मी के विवेक को जान लेने पर भी एकधर्मिगत धर्मों के अन्यधर्मी अध्यास में उदाहरण होता है पीतः शङ्खः (पीला शङ्ख) इस प्रकार से।

जिस प्रकार से बाहर घूमते समय स्वच्छ नयन रश्मि पित्तदोष से दूषित होने के कारण पीत मात्र का अनुभव करता हुआ शङ्ख में इन्द्रिय दोष के कारण से शुक्लता को नहीं देखता हुआ व्यक्ति शङ्ख में भी पीत वर्ण ही देखता है, तथा पूर्वदृष्ट अनुभव से ही अनुभूय पीतं तपनीयपिण्डम् पीतं बिल्वफलत् इत्यादि में भी पूर्वदृष्ट पीत्वत तथा शङ्ख का आरोप करता है। इस प्रकार से पीतः शङ्खः यह उदाहरण वाचस्पतिमिश्रादि के द्वार दिया गया है।

14.2) भ्रम ज्ञान विचार

शुक्ति में रजत रूप में उत्पन्न होने वाला भ्रम ही होता है। भ्रमज्ञान होने पर अधिष्ठान के एकदेश में होने से तादात्म्य भान होता है। जहाँ पर आरोप होता है। वह अधिष्ठान कहलाता है। जब शुक्ति में रजत का आरोप होता है तब शुक्ति रजत का अधिष्ठान कहलाती है। अधिष्ठान का सामान्य अंश विशेषार्थ होते हैं। जैसे यह रजत है इस प्रकार का ज्ञान होने पर यह शुक्ति का सामान्य अंश है। जब काचकामलादि दोष दूषित चक्षु इन्द्रिय के साथ शुक्ति का संयोग होता है। तब चक्षु के द्वारा अन्तः करण का शुक्ति के सम्बन्ध वश इस प्रकार के आकार वाली अन्तः करण की वृत्ति उत्पन्न होती है। इन्द्रयों के दोष के कारण से शुक्तित्व-नीलपृष्ठत्वादि विशेष का ज्ञान नहीं होता है। इसलिए यह रजत है इस प्रकार के ज्ञान में इदं अंश मिथ्या होता है जो की स्वरूप से मिथ्या नहीं होता है। इसलिए पञ्चदशीकार विद्यारण्यस्वामी ने कहा है "इदमंशस्य सत्यत्वं शुक्तिगं रूप्य ईक्षते" इस प्रकार से यहाँ पर प्रत्येक में अधिष्ठान का सामान्य अंश होता है। शुक्ति में आरोपित रजत के साथ अन्तः करण का संयोग नहीं होता है इसलिए रजताकार अन्तः करण की वृत्ति का उदय नहीं होता है। अद्वैत वेदान्त के ज्ञानस्थल में विषयाकार वृत्ति को हमेशा अङ्गीकार करना चाहिए, इसलिए शुक्ति में रजत के ज्ञान स्थल पर रजताकार अविद्या वृत्ति अङ्गीकार की जाती है। उससे रजत का ज्ञान सम्भव होता है। यह रजत ही भ्रमज्ञान में विद्यमान होता है, व्यहारिक रजत के वहाँ पर अविद्यमानत्व से यह रजतांश तो यहाँ पर मिथ्या होता है। इसलिए-

यद्यपि सन् इत्यंशेन सह नास्ति घटस्य सम्बन्धः तथापि घटेन सह तादात्म्येन सन् इत्यंशस्य भानात् घटः सन् इति ज्ञानं भ्रम एव। एवं सर्वत्रानुसन्धेयम्।

यह रजत है यहाँ पर भ्रम ज्ञान होने पर इदमंश स्वरूप से तो मिथ्या नहीं होता है, रजत का अंश ही मिथ्या होता है। शुक्त्यंशत्व के कारण इदं अंश के साथ रजत का सम्बन्ध नहीं होता है, लेकिन यह

ध्यान दें:

रजत है इस प्रकार का ज्ञान होने पर इदं के तादात्म्य के द्वारा रजत के भान से यह रजत है इस प्रकार का ज्ञान मिथ्या होता है।

इसी प्रकार ब्रह्म में प्रपञ्च का ज्ञान आरोपवश होता है। सत्ताविशिष्ट सत्तादात्म्यापन्न घट होता है। यह ज्ञान हो जाने पर सत्ताविशिष्ट अधिष्ठान ब्रह्म का यह स्वरूप मिथ्या नहीं होता है। घट के ब्रह्म में आरोपितत्व से मिथ्यात्व द्वारा होता है। भले ही इस अंश के साथ घट का सम्बन्ध नहीं है फिर भी घट के साथ तादात्म्य से इस अंश के भान से घट होता है यह ज्ञान भ्रम ही है। इस प्रकार से सभी जगहों पर अनुसन्धान करना चाहिए।

पाठगत प्रश्न 14.1

1. प्रमा का लक्षण क्या है?
2. विषयचैतन्य किसे कहते हैं?
3. प्रमाणचैतन्य किसे कहते हैं?
4. प्रमातृचैतन्य किसे कहते हैं?
5. शुक्ति तथा रजत की उत्पत्ति में इन्द्रियदोष क्या होता है?
6. प्रातिभासिकत्व में नियामतक क्या होता है?
7. यह रजत है इस प्रकार का ज्ञान होने पर कौन शुक्ति के सामान्यांश का निर्देश करता है?
8. इदम् अंश के सत्यत्व होने पर कैसे यह रजत है इस प्रकार का ज्ञान होने पर वह भ्रम कहलाता है?
9. इन्द्रियदोष के कारण से शुक्ति के किन अंशो का ज्ञान नहीं होता है?
10. ज्ञानस्थल में अन्तः करण की वृत्ति किसलिए अपेक्षित है?
11. एक ही अविद्या कभी रजत के रूप में कभी रङ्ग के विपरिणित होती है?

14.3) अध्यास का उपादान तथा निमित्त कारण

आगन्तुक दोष के संस्कार के लिए अधिष्ठान समान्य ज्ञान सादृश्य अविद्या ही अध्यस्त वस्तु के उत्पत्ति में हेतु रूप से अङ्गीकार की जाती है। उनमें सत् ही अध्यास होता है न की उसका अभाव, इन कारणों में फिर अविद्या ही अध्यस्तवस्तु की उपदानकारण होती है। अन्य तो निमित्त कारण होते हैं। जिस से कार्य की उत्पप्ति होती है तथा कार्य का नाश होने पर कार्य का लय जहाँ पर होता है वह ही उपादान कारण है। जिस प्रकार से घट मृत्तिका से उत्पन्न होता है तथा घट का नाश होने पर घट का मृत्तिका में ही लय हो जाता है। इसलिए मृत्तिका ही घट का उपादान कारण है। अध्यस्त वस्तु से उत्पन्न होने वाली अविद्या का परिणाम ही होता है। सभी प्रकार के कार्य उन उपादान कारण की अविद्या के अधिष्ठान ब्रह्म में रुकते हैं। इसलिए शुक्ति में प्रतीयमान रजत वस्तुगत होती हुई शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्य में अध्यस्त होती है। वेदान्तपरिभाषा में धर्मराजध्वरीन्द्र ने कहा है- "अस्मन्मते सर्वस्यापि कार्यस्य स्वोपादानाविद्याधिष्ठानाश्रितत्वनियमात्" इस प्रकार से प्रातिभासिक रजत का परिणाम उपादान कारण अविद्या होती है तथा विवर्त का उपादानकारण यह अवच्छिन्न चैतन्य ही होता है।

ध्यान दें:

संस्कार अध्यास का कारण नहीं होता है प्रथम उत्पत्ति होने के कारण संस्कार के अभाव से। इसलिए कहा गया है ब्रह्म में वर्तमानजगत् अध्यास के प्रति पूर्वजगत् संस्कार हेतु होता है। लेकिन सर्वप्रथम जगत् की उत्पत्ति होने के कारण किस प्रकार संस्कार हेतु होता है तब कहते है कि संसार अनादि है इसलिए जगत् का प्रथम निरूपण अशक्य होता है। उसका आश्रय लेकर यह पूर्वपक्ष भी सम्भव नहीं होता है। इसलिए शङ्कराचार्य ने श्रीमद्भगवद्गीता के भाषा में कहा है कि **"यथा अस्मिन् जन्मनि देहादिसङ्घाताभिमानरागद्वेषादिकृतौ धर्माधर्मौ तत्फलानुभवश्च, तथा अतीते अतीततरेऽपि जन्मनि इति अनादिरविद्याकृतः संसारः अतीतोऽनागतश्च अनुमेयः"।**

सादृश्य सभी जगह अध्यास में निमित्तकारणरूप से नहीं होता है, सादृश्य का अभाव भी अध्यास में बहुत बार होता है। जैसे पीला शङ्ख, आकाश में मालिन्य का अभाव इत्यादि। रस्सी में सर्प का भय भले ही अवयवगत सादृश्य के कारण होता है फिर भी ब्रह्म प्रपञ्च अध्यास में ब्रह्म प्रपञ्च का किस प्रकार का सादृश्य हेतुत्व के रूप में होता है। दृष्टा तथा दृश्य में जड तथा चैतन्य में, तम तथा प्रकाश के अविरुद्धस्वभाव में, ब्रह्म तथा प्रपञ्च में अत्यन्तवैलक्षण्यसत्व होने पर भी 'अहमिदं मम्इदम्' यह में हूँ तथा यह मेरा है इस प्रकार के तादात्म्य अध्यास के दर्शन से सादृश्य के सभी प्रकार के अध्यास के प्रति कारणत्व अङ्गीकार किया नहीं जाता है। इसलिए कहा गया है

विवर्तस्तु प्रपञ्चोऽयं ब्रह्मणोऽपरिणामिनः।
अनादिवासनासम्भूतो न सारूप्यमपेक्षते॥ इति।

नृसिंहभट्ट उपाध्याय के मत में जहाँ पर अध्यास शुक्तित्वदि विशेष दर्शन के द्वारा प्रतिबद्ध होता है वहाँ पर अध्यास सादृश्य ज्ञान का कारणत्व होता है। उसी मत को सिद्धान्तलेशसङ्ग्रह में ग्रहण किया गया है- **''सादृश्यज्ञानस्याध्यासकारणत्ववादेऽपि विशेषदर्शनप्रतिबध्येषु रजताद्यध्यासेष्वेव तस्य कारणत्वं वाच्यं, न तु तदप्रतिबध्येषु पीतशङ्खाद्यध्यासेषु, असम्भवात्''** इति। अर्थात् सादृश्य ज्ञान का अध्यास कारणत्व वाद होने पर भी असम्भव होने के कारण विशेष दर्शन प्रतिबद्ध रजताध्यासो में ही उसका कारणत्व वाच्य होता है, न की उसके प्रतिबद्धपीतशङ्खादि अध्यासों में। इस प्रकार से सादृश्य का कुछ कारण अङ्गीकार किया जाता है।

14.4) अध्यस्त वस्तु का स्वरूप

आरोपित वस्तु का अनिर्वचनीयत्व अद्वैत वेदान्ति अङ्गीकार करते हैं। जैस शुक्ति में रजत सत् नहीं होता है, उसके सत् होने पर यह शुक्ति है इस प्रकार के उत्तर ज्ञान के द्वार उसका बाध नहीं होता है। आत्म के द्वारा शुक्ति को रजत के रूप में ग्रहण करता हुआ व्यक्ति भ्रमित होता है। शुक्ति में प्रतीत होने वाला रजत् असत् है यह भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि वह उसमें प्रतीत होता है। शुक्ति में जो रजत है वह दूसरे स्थान पर है ऐसा भी नहीं कह सकते हैं क्योंकि यह रजत है यहाँ पर इदम् अहंकार के द्वारा पूर्व में अवस्थित तत्व का ही निर्देश दिया गया है। इसलिए शुक्ति में रजत है यह बाधित भी नहीं होता है तथा जो प्रतीत होता है वह भी नहीं होता है। उस रजत को सत् तथा असत् के रूप में अङ्गीकार भी नहीं किया जा सकता है क्योंकि सत् तथा असत् के परस्पर विरुद्ध होने के कारण उसका सामानाधिकरण्य सिद्ध नहीं होता है। इसलिए रजत न तो सत् है और नहीं असत्, तथा सदसत् दोनों ही नहीं है। अपितु वह सद् तथा असत् दोनों के द्वारा अनिर्वचनीय है।

वह रजत अज्ञानोप पादक तत्कालोत्पन्न अभिनव होता है। रजत के बिना रजत का ज्ञान सम्भव नहीं होता है। इसलिए पूर्ववर्ती शुक्ति में ज्ञानकाल में प्रातिभासिक रजत की उत्पत्ति अङ्गीकार करना चाहिए। उस रजत के दूसरे स्थान पर असत्व होने से तथा वहाँ पर उत्पन्नत्व से उसका अभिनवत्व सिद्ध होता है।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्न 14.2

1. अध्यस्तवस्तूत्पत्ति में कौन हेतु के रूप में रुकते हैं?
2. अध्यस्तवस्तु का क्या उपादान होता है?
3. आगन्तुकदोष संस्कारादि अध्यस्तवस्तु के किस प्रकार से कारण कहलाते हैं।
4. उपादानकारण किसे कहते हैं?
5. सभी प्रकार के कार्य कहाँ पर अध्यस्त कहलाते हैं?
6. किन अध्यासों में सादृश्य का ज्ञान कारण कहलाता है?
7. अद्वैत वेदान्त के मत में आरोपित वस्तु का क्या स्वरूप होता है?
8. ब्रह्म में प्रपञ्च का अध्यास होने पर सादृश्य के रूप में क्या हेतुत्व होता है?

14.5) ख्यातिवाद

व्यक्त वाक् के अर्थ में विद्यमान चक्ष् धातु से भाव अर्थ में क्तिन् प्रत्यय करने पर ख्याति शब्द निष्पन्न होता है। ख्याति शब्द का ज्ञान यह अर्थ होता है। दर्शनशास्त्र में ख्याति शब्द भ्रम में भासमान वस्तु के ज्ञान के रूप प्रयुक्त है। दार्शनिक लोग भ्रम में भासमान वस्तु के स्वरूप के विषय में बहुत प्रकार के मत उपस्थापित करते हैं। इसलिए विविध प्रकार की ख्यातियाँ प्रसिद्ध हो चुकी हैं। उनमें आत्मख्याति, असत्ख्याति, अख्याति, अन्यथाख्याति, अनिर्वचनीयख्याति, ये पाँच ख्यातियाँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इसलिए कहा भी गया है।

आत्मख्यातिरसत्ख्यातिरख्याति: ख्यातिरन्यथा।
तथानिर्वचनख्यातिरित्येतत्ख्यातिपञ्चकम्॥
योगाचारा माध्यमिकास्तथा मीमांसका अपि।

नैयायिक तथा मायावादियों ने पाँच ख्याति क्रम से मानी है। इनके अलावा रामानुज की सत्ख्याति, वीरशैवों की अलौकिकख्याति, विज्ञानभिक्षु की सदसत्ख्याति, भाट्ट तथा पातञ्जलों की अन्यथाख्याति, इत्यादि ख्यातियों के विचार करने के समय सबसे पहले इनके आलोचन का विषय उपस्थित हो जाता है। अत: सर्वप्रथम मुख्य पाँच ख्यातियों का आलोचन उपस्थापित किया जा रहा है।

आत्मख्याति सौत्रान्तिक-वैभाषिक तथा योगाचारों का ख्यातिविषयक वाद आत्मख्याति इस प्रकार से कहलाता है। इसलिए इनके मत में रजतभ्रम में प्रतीयमान रजत ज्ञानकारक होता है तथा उसका बाहर आरोप होता है। सौत्रान्तिकों के मत में बाहर प्रत्यक्ष विषय में, वैभाषिकों के मत में बाहर अनुमान के विषय में, योगाचारों के मत में अनादि अविद्या वासनारोपित अलिकबाह्य विषय में ज्ञानाकार का आरोप होता है। इसलिए उनके मत में बाह्यशुक्त्यादि में ज्ञानाकार रजत का आरोप होता है। बोद्धों के मत में विज्ञानप्रवाह अतिरिक्त आत्मा के अस्वीकार से रजत की विज्ञानस्वरूपत्व से जो ख्याति होती है वह आत्मख्याति कहलाती है।

अख्याति प्राभाकरमीमांसकों का अख्यातिवाद प्रसिद्ध है। उनके मत में सभी प्रकार का ज्ञान समीचीन होता है। प्रभाकर के मत में यह रजत है इस प्रकार से शुक्तिरजतज्ञानस्थल मे ही दो प्रकार के ज्ञान होते है। वहाँ पर इदं यह प्रत्यक्ष का विषय तथा रजत यह स्मृति का विषय होता है। इसलिए इन दोनों में महान भेद होता है। लेकिन उन दोनों के भेद के अग्रहण से समानाधिकरण्य के द्वारा यह रजत

ध्यान दें:

है इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। क्योंकि अनुभव तथा स्मरण में विवेक के (भेद के) अग्रहण से यह रजत है इस प्रकार का लोकप्रसिद्ध ज्ञान उत्पन्न होता है। इसलिए इनके मत में विवेकख्याति ही अख्याति कहलाती है।

अन्यथाख्याति नैयायिकों का तथा भाट्टमीमांसकों का वाद अन्यथा ख्यातिवाद कहलाता है। विपरीतख्याति इसका दूसरा नाम है। नैयायिकों के मत मे शुक्ति में यह रजत है, इस प्रकार के भ्रमस्थल में देशान्तरस्थ रजत ही पुरोवर्तिनी शुक्ति में प्रतिभासित होता है। इसलिए शुक्ति के अन्यथा देशान्तरस्थरजतादिरुप के ज्ञान से यह इनके मत में अन्यथा ख्याति कहलाती है।

असत्ख्याति शून्यवादि तथा माध्यमिक बौद्ध ही असत्ख्यातिवादी कहलाते हैं। इनके मत में यह रजत है इस प्रकार से शुक्ति में रजत के भ्रमस्थल पर अधिष्ठान शुक्ति भी असत् होती है तथा वहाँ पर प्रतीयमान रजत भी असत् ही होता है। शुक्ति में अत्यन्त असत् रजत की कल्पना से यह ख्याति असत् ख्याति इस प्रकार से कहलाती है।

अनिवर्चनीयख्याति अद्वैतवेदान्तियों के मत में तो शुक्ति में प्रतीयमान रजत ही सद् तथा असत् के द्वारा अनिर्वचनीय होता है। इसलिए यह रजत है यहाँ अद्वैत वेदान्तियों के द्वारा अनिर्वचनयीख्याति अङ्गीकार की गई है।

आत्मख्यातिवाद में विज्ञानधर्म के सत्य के ही रजत के भ्रमस्थल में स्वीकार करने से अख्यातिवाद में स्मृतिविषय के सत्य होने से ही विषय को शुक्ति में यह रजत है इस प्रकार से अङ्गीकार किया गया है। अन्यथाख्यातिवाद में देशान्तरस्थ सत्य के ही रजत के भ्रमस्थल में प्रतीयमानत्व से इनकी सत्ख्याति इस प्रकार के अभिधान के द्वारा भी व्यपदिष्ट होती है। इसलिए इष्टसिद्धिकार विमुक्त आत्मा के द्वारा कहा गया है कि-

अन्यथाख्यातिरख्यातिरात्मख्यातिरिति त्रयः।
सत्ख्यातिपक्षा नैतेऽपि विना सिध्यन्ति मायया॥

भगवान् रामानुजाचार्य का ख्यातिविषयक मतवाद भी सत्ख्याति कहलाती है। रामानुजाचार्य के मत में तो सबकुछ भूत पञ्चीकृत ही है। इसलिए शुक्ति में तथा रजत में बहुत सारे साधारण अवयव है। शुक्ति में रजत अवयव सदृशों को देखने के बाद ही यह ज्ञान होता हैं कि यह रजत है। लेकिन शुक्ति में रजतावयवसदृश अवयवों से अतिरिक्त जितनें भी अवयव होते हैं उनके ज्ञान के अभाव से शुक्ति में यह रजत है इसप्रकार से उत्पन्न होने वाला ज्ञान भ्रम ही कहलाता है। यहां पर रजतावयवसदृश अवयवों के शुक्ति में दर्शन से ज्ञान में भासमान विषय ही होता है।

पाठगत प्रश्न 14.3

1. ख्यातिपद का क्या अर्थ है?
2. आत्मख्यातिवादी कौन है?
3. अख्यातिवादी कौन हैं?
4. असत्ख्यातिवादी कौन है?
5. अद्वैतवेदान्तियों का ख्यातिवाद किस नाम से प्रसिद्ध है?
6. अन्यथाख्यातिवादी किसे अङ्गीकार करते हैं?

ध्यान दें:

7. अन्यथाख्याति का अपर नाम क्या है?

8. रामानुजचार्य का ख्यातिवाद किस नाम से प्रसिद्ध है?

14.6) परिणामवाद तथा विवर्तवाद

शुक्ति में प्रतीयमान रजत अज्ञान का परिणाम है। शुक्ति विषयक अज्ञान ही रजताकार में परिणमित होता है। वह रजत शुक्त्यवच्छिन्नचैतन्य का विवर्त होता है। इसलिए अज्ञान ही शुक्ति रजत का परिणामी उपादान है, तथा इदमवच्छिन्न रजत ही शुक्ति रजत का विवर्तोपादन है। अपवाद स्वरूप कथन काल में सदानन्दयोगीन्द्र के द्वारा वेदान्तसार में परिणाम तथा विवर्त का स्वरूप आलोचित किया गया है। जैसे रस्सी कार्यभूत सर्प की जिस प्रकार से रस्सी के अलावा पृथक सत्ता नहीं है उसी प्रकार ब्रह्म से समुत्पन्न इस जगत् की भी ब्रह्म के अतिरिक्त पृथक् सत्ता नहीं है। अब कहते हैं की किस प्रकार से यह जगत् ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है। सजातीय कारण से ही सजातीय कार्य की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार का दार्शनिकों का सिद्धान्त है। तथा इस मत को आधार मानकर के सांख्यों के द्वारा इस प्रतीयमान जगत् का तत्सजातीय कारण के रूप में सामान्य तथा दृष्ट अनुमान से प्रकृति का अनुमान किया गया है। लेकिन ब्रह्म जगत् का सजातीयत्व नहीं होता है। ब्रह्म चेतन तथा अचेतन जगत् के रूप में होता है, इसलिए विजायतीय ब्रह्म किस प्रकार से जगत् का कारण होगा, लेकिन यदि ब्रह्म ही जगत होता है तो यह प्रश्न हमेशा उठेगा की क्या सम्पूर्ण ब्रह्म ही जगत् के रूप में है अथवा ब्रह्म का कोई अंश जगत् के रूप में है। यदि पहले पक्ष को अङ्गीकार करें तो जगत के रूप में परिवर्तन के कारण से यह ब्रह्म नहीं है इस प्रकार का भाव होता है तथा दूसरे पक्ष को अङ्गीकार करें तो ब्रह्म के सावयव स्वरूप की आपत्ति उत्पन्न होती है। इसलिए यहाँ पर कहा गया है कि यह ब्रह्म जगत् के रूप में उत्पन्न नहीं होता है जिससे पूर्व आपत्ति का समाधान हो जाता है। यह जगत् ब्रह्म में आरोपित है, इसलिए जगद् ब्रह्म का विवर्त तथा अज्ञान का परिणाम कहलाता है। अब प्रश्न करते हैं की विवर्त किसे कहते हैं तथा परिणाम किसे कहते हैं। इसे सदानन्दयोगीन्द्र का एक वचन है

सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विकार इत्युदीरितः।
अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा विवर्त इत्युदीरितः॥ इति।

कारण के स्वरूप से ही अन्यथाभाव तथा अन्यरूप धारण करने वाला परिणाम होता है।स्वरूप को बिना त्यागे कारण का अन्यथा भाव विवर्त कहलाता है। जैसे दही दूध का परिणाम होता है, दूध स्वरूप ही अन्यथा स्थिति ग्रहण करके दही रूप में परिणमित होता है। इसलिए दही दूध का परिणाम कहलाता है। अन्धकार में जैसे रस्सी में सर्प का अनुभव होता है, उस समय रस्सी अपना स्वरूप त्याग किये बिना ही सर्पाकार में प्रतिभासित होती है। इसलिए जब यह सर्प नहीं है ऐसा कहने पर सर्प का बाध होता है तब वह रस्सी मात्र ही अवशिष्ट रहती है। इसलिए सर्प ही रज्जु के रूप में विवर्त होता है।

अप्पय्यदीक्षित ने सिद्धान्तलेशसंग्रह में परिणाम तथा विवर्त का लक्षण इस प्रकार से किया है - वस्तुनस्तत्समसत्ताकोऽन्यथाभावः परिणामः, तदसमसत्ताको विवर्त इति, अर्थात् वस्तुओं का उसकी सत्ता से अन्यथा भाव ही परिणाम तथा उसके समान सत्ता ही विवर्त होती है। धर्मराजध्वरीन्द्र ने वेदान्तसार की परिभाषा में कहा है कि परिणामो नामोपादानसमसत्ताककार्यापत्तिः। विवर्तो नामोपादानविषमसत्ताककार्यापत्तिः इति। अर्थात् उपानदान सत्ता के समान कार्यापत्ति परिणाम होता है, तथा उपादान सत्ता से विपरीत कार्यापत्ति विवर्त कहलाता है।

अद्वैत वेदान्त में तीन प्रकार की सत्ता अङ्गीकार की गई हैं। पारमार्थिक सत्ता,व्यावहारिक सत्ता तथा प्रातिभासिक सत्ता। पारमार्थिक सत्ता का लक्षण कालत्रयबाध्यत्व होता है। ब्रह्म के अतिरिक्त सभी का

ध्यान दें:

ही ब्रह्म ज्ञान से बाध्य होने के कारण ब्रह्म ही कालत्रयबाध्यत्व कहलाता है। जिसकी सत्ता का ब्रह्म ज्ञान के द्वारा बाध नहीं होता है, और नहीं किसी और शुक्ति रज्जु आदि ज्ञान के द्वारा वह व्यवहारिक सत्ता होती है। शुद्ध ब्रह्म में आरोपित अज्ञान से उसके कार्यों की व्यवहारिक सत्ता अङ्गीकार की जाती है। ब्रह्म ज्ञान के द्वारा ही इनका बाध उत्पन्न होता है । प्रातिभासिकसत्ता का लक्षण ब्रह्मज्ञान से इतर ज्ञान का बाध्यत्व है इसलिए शुक्ति में प्रतीयमान रजत का ज्ञान ब्रह्म ज्ञान से भिन्न ज्ञान के द्वारा बाधित होता है। अत: शुक्ति में प्रतीयमान रजत की सत्ता प्रातिभासिक सत्ता कहलाती है।

जब उपादान की तथा उसके कार्य की सत्ता समान होती है तब उपादान से कार्य की उत्पत्ति होती है वह परिणाम कहलाती है। जैस दूध की सत्ता व्यावहारिक सत्ता होती है। तथा दूध से उत्पन्न कार्य दही सत्ता की भी व्यावहारिक सत्ता ही होती है। इसलिए दूध तथा दही के उपादान तथा समान सत्ता विशिष्टत्व से दूध से दही की उत्पत्ति परिणाम कहलाती है। कारण की तथा कार्य की सत्ता यदि समान नहीं होती तो उपादन से कार्य की उत्पत्ति विवर्त कहलाती। जैस ब्रह्म से जगत उत्पन्न होता है। यहाँ पर ब्रह्म की सत्ता पारमार्थिक है तथा जगत की सत्ता व्यावहारिक है। ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति में उपादान तथा कार्य के विषमसत्ताविशिष्टत्व से ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति विवर्त ही कहलाती है।

अद्वैतवाद में जगत् की सत्ता को आधार मानकर के तीन मत प्रसिद्ध हैं अजातवाद,दृष्टिवाद तथा सृष्टिदृष्टिवाद। मूलसिद्धान्तों में साम्य होते हुए भी इनमें मतभेद होता ही है। गौडपादप्रमुख अजातवादि के मत में जगत् अजात् होता है अर्थात कभी भी उत्पन्न नहीं होता है। इनकी पारमार्थिक सत्ता मात्र ही अङ्गीकार की जाती है। प्रकाशानन्दप्रमुखों के दृष्टिसृष्टिवादि के मत में जब जगत का ज्ञान होता है तब ही जगत होता है तथा अज्ञान काल में जगत् नहीं होता है। ये पारमार्थिक तथा पारिभाषिक दो सत्ता को ही अङ्गीकार करते हैं। शङ्काराचार्यादि प्रमुख सृष्ठि दृष्टि वादियों के मत में जगत् ईश्वर के द्वारा बनाया गया है तथा जीव के द्वारा जगत् अनुभव किया गया है। सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में जब जगत् का अनुभव नहीं होता है तब भी जगत् होता है इसलिए ये तीन सत्ता वादी कहलाती हैं। विवर्त तथा परिणाम में जो लक्षण प्रस्तुत किये गये हैं। वे दृष्टि तथा सृष्टि वाद के साथ नहीं चलते हैं। क्योंकि जैसे दूध तथा दही की एवं रज्जु तथा सर्प की समान सत्ता के इस वाद में आपत्ति उत्पन्न होती है। इसलिए परिणाम तथा विवर्त का दूसरा लक्षण अप्पय्यदीक्षि ने यह दिया- कारणसलक्षणोऽन्यथाभाव: परिणाम:, कारणविलक्षणोऽन्यथाभाव: विवर्त: इति। अर्थात् कारण तथा सलक्षण का अन्यथाभाव परिणाम कहलाता है। और कारण तथा विलक्षण का अन्यथा भाव विवर्त होता है। जैसे जब उपादान कारण के सजातीयरूप कार्य के साथ का अन्यथा भाव होता है तब वह परिणाम कहलाता है तथा जब उपादान कारण का विजातीय रूप कारण के कार्य के साथ अन्यथा भाव होता है तब विवर्त कहलाता है। जैस दूध तथा दही दोनों ही अचेतन होते हैं दूध अचेतन का उसके सजातीय अचेतन दही रूप के साथ अन्यथा भाव परिणाम कहलाता है तथा तथा ब्रह्म चेतन का उसके विजातीय अचेतन जगत् के साथ अन्यथा भाव विवर्त कहलाता है। यहाँ पर यह आक्षेप किया जाता है कि शुक्ति से रजत की उत्पत्ति भी तो परिणाम ही होनी चाहिए क्योंकि शुक्ति तथा रजत दोनों ही अचेतन होती है। यहाँ पर यह कहते हैं कि शुक्ति रजत का उपादान नहीं होती है शुक्ति का उपादान तो शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्य होता है। अज्ञान उसके कार्य शुक्ति का आवरण नहीं करता है अपितु अज्ञान तो शुक्ति अवच्छिन्न चैतन्य का ही आवरण करता है, इसलिए शुक्ति अवच्छिन्न चैतन्य से विजातीय अचेतन रजत की समुत्पत्ति विवर्त ही होती है। इस प्रकार से यह कह सकते हैं की शुक्ति से रजत की उत्पत्ति होती है। इस लक्षण के निर्दिष्ट होने पर भी परिणाम तथा विवर्त का अप्पयदीक्षित ने तीसरा लक्षण यह किया है- कारण से अभिन्न कार्य परिणाम होता है तथा उसी का भेद व्यतिरेक कार्य विवर्त कहलाता है। उपादान कारण से साथ अभिन्न कार्य जब उत्पन्न होता है तब वह कार्य परिणाम कहलाता है, जैसे मृत्तिका से घट की उत्पत्ति में मृत्तिका तथा घट में कोई भेद नहीं होता

ध्यान दें:

है। जो घट होता है वही मृत्तिका होती है इस प्रकार का व्यवहार लोक में प्रसिद्ध है। इसलिए घट ही मृत्तिका का परिणाम होता है। उपादान कारण के साथ अभेद के बिना ही प्रतीयमान उपादानकारण के व्यतिरेक के द्वारा निरूपण योग्य कार्य विवर्त कहलाता है। शुक्ति तथा रजत के उदाहरण में तो प्रतीयमान रजत तथा भेद होता ही है। वास्तविक दृष्टि से यहाँ पर कुछ नहीं होता है जो रजत होती है वही शुक्ति होती है इस प्रकार से कही जाती है। लेकिन अधिष्ठान शुक्ति के अलावा रजत की सत्ता का प्रतिपादन भी नहीं किया जा सकता है। इसलिए शुक्ति तथा रजत के भेद के बिना भी शुक्तिव्यतिरेक से दुर्वचरण विवर्त ही होता है।

पाठगत प्रश्न 14.4

1. क्या शुक्ति रजत का परिणामी उपादान है अथवा विवर्त उपादान?
2. सदानन्दयोगीन्द्र के द्वार परिणाम का क्या लक्षण कहा गया है?
3. सदानन्दयोगीन्द्र के द्वारा विवर्त का क्या लक्षण कहा गया है?
4. वेदान्त परिभाषा में परिणाम तथा विवर्त का क्या लक्षण कहा गया है?
5. पारमार्थिकसत्ता का क्या लक्षण है?
6. व्यावहारिकसत्ता का क्या लक्षण है?
7. प्रातिभासिक सत्ता का क्या लक्षण है?
8. अद्वैतवाद में जगत की सत्ता को आधार मानकर के कौन कौन से वाद प्रसिद्ध हैं?
9. सिद्धान्तलेश सङ्ग्रह में विवर्त तथा परिणाम का तीसरा लक्षण क्या है?

पाठ सार

इस पाठ में अध्यास की उत्पत्ति प्रकार विषय में अध्यासकारण विषय में अध्यस्तवस्तु के स्वरूप का विस्तार पूर्वक आलोचन किया गया है। विषय चिन्तन के साथ प्रमातृचैतन्य का अभेद के सत्य होने से विषय का ज्ञान होता है। अन्त: करण जब चक्षु के द्वारा विषयदेश के प्रति जाता है तो वह विषय के आकार में परिणमित हो जाता है तब अन्तकरण वृत्ति उत्पन्न होती है। अन्तकरणवृत्ति विषयावच्छिन्न चैतन्य के आवरक अज्ञान का नाश करती है। उसके द्वारा चैतन्य तथा स्वरूप में, विषयचैतन्य तथा प्रमातृचैतन्य में जो अभेद होता है वह विषय प्रत्यक्ष होता है। शुक्ति में रजत भ्रमकाल में अन्त:करण जब काचकामलादि दोषयुक्त चक्षु इन्द्रिय द्वारा से शुक्ति के साथ सम्बन्ध बनाता है तब इन्द्रियदोषवश यह वस्तुमात्र है इस प्रकार का सामान्य ज्ञान होता है। शुक्तित्वरूप विशेष का ज्ञान नहीं होता है। वहाँ पर चाकचिक्यादिसादृश्यदर्शन के कारण से रजत का संस्कार उद्बुद्ध होता है।तब शुक्ति विषयिणी अविद्या उद्बोधित रजतसंस्कार सामग्री के साथ काचकमलादि दोष सहित रजतरूपार्थाकार से तथा रजतज्ञानाभान कारण से परिणित होती है।

शुक्ति में यह रजत है इसप्रकार से उत्पन्न ज्ञान भ्रम ही होता है। भ्रमज्ञान में अधिष्ठान एकदेश के आरोप का तादात्म्य से भान होता है। यह रजत है इस प्रकार का ज्ञान होने पर यह अशं शुक्ति के सामान्यांश का बोध करवाता है। यह रजत है इस प्रकार का आरोप करके रजत का निर्देश करता है। चक्षु इन्द्रिय के साथ शुक्ति के सन्निकर्ष वश इदं आकारवाली अन्त: करण की वृत्ति उत्पन्न होती है। इसलिए इदं (यह) इस प्रकार का ज्ञान यथार्थ ही होता है। फिर भी अनिर्वचनीय आरोपित रजत के साथ अभेद

ध्यान दें:

से प्रतीयमानत्व यह रजत है इस प्रकार का भ्रम होता है। यह तादात्मापन्न रजत है इसका यहाँ पर बोध होता है। शुक्ति में प्रतीयमान रजत ही अनिर्वचनीय अविद्या तत्कालोत्पन्न अभिनव होती है।

भ्रम स्थल में प्रतीयमान वस्तु का क्या स्वरूप होता है इस प्रकार के विषय में बहुत से वाद हैं। उनमें मुख्य है आत्मख्याति, अख्याति, अन्यथाख्याति, असत्ख्याति, अनिर्वचनीयख्याति। सौत्रान्तिक वैभाषिक, योगचार तथा बोद्धों के शास्त्र में विज्ञान ही बाह्य वस्तु कारण के द्वारा प्रतिभासित होती है। इनके मत में आत्मख्याति प्रसिद्ध है। अख्यादि वादी प्रभाकारादि मीमांसक है। उनके मत में इदं (यह) प्रत्यक्षज्ञानविषय रजत है इस प्रकार से यह रजत स्मृति का विषय है। उन दोनों में भेद होने पर भी दोष कारण से भेद का ग्रहण नहीं होता है। प्रभाकर के मत में तो उसके अभेद से यह रजत है इस प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। नैयायिक तथा भाट्टमीमांसक अन्यताख्यातिवादी कहलाते हैं। इनके मत में देशान्तरस्थ सत्य रजत ही ज्ञानलक्षण सन्निकर्ष से सामने स्थित शुक्ति में ही प्रत्यक्ष होता है। शून्यवादी बौद्ध ही असत्ख्यातिवादी कहलाते हैं। इनके मत में यह रजत है इस प्रकार का ज्ञान होने पर शुक्ति में ही अत्यन्त असत् रजत का भान होता है। अद्वैतवेदान्ति अनिर्वचनीयख्यातिवादी होते हैं। ये भ्रमभूत रजत का सद् तथा असद् के द्वारा अनिर्वचनीयत्व अङ्गीकार करते हैं।

रजत ही शुक्ति विषयक ज्ञान का परिणाम है तथा शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्य विवर्त है। इस प्रकार से जगत भी अज्ञान का परिणाम है तथा ब्रह्म का विवर्त है। कारण से उसके समान सत्ताविशिष्ट कार्य की उत्पत्ति परिणाम कहलाती है। तथा कारण से उससे अभिन्न सत्ताविशिष्ट कार्य की उत्पत्ति विवर्त कहलाती है। जैस व्यावहारिक सत्ता विशिष्ट मिट्टी से व्यावहारिक सत्ता विशिष्ट घट की उत्पत्ति होती है। इसलिए घट ही मृत्तिका का परिणाम कहलाता है। व्यावहारिकसत्ताविशिष्ट शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्य से प्रातिभासिक रजत की उत्पत्ति होती है। इसलिए रजत शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्य का विवर्त होता है। इस प्रकार से कारण के तत्सजातीय अन्य रूप की प्राप्ति परिणाम तथा विजातीय अन्यरूप की प्राप्ति विवर्त कहलाती है। जिस प्रकार से जड अज्ञान का तत्साजातीय जड़ प्रपञ्चरूप प्राप्ति परिणाम है तथा चैतन्यस्वरूप ब्रह्म का तद्विजातीय जडप्रपञ्चरूप प्राप्ति विवर्त होता है। लेकिन कार्य से अभिन्न कार्य का परिणाम होता है। उपादान कारण के साथ अभेद के बिना ही प्रतीयमान लेकिन उपादान व्यतिरेक दुर्वच कार्य विवर्त होता है।

मृत्तिका से उत्पन्न उससे भिन्न घट परिणाम होता है लेकिन चैतन्य से भिन्न लेकिन चैतन्य के बिना अभावापन्न प्रपञ्च विवर्त होता है। इस प्रकार से परिणाम तथा विवर्त का आलोचन शास्त्रों में किया गया है।

इसलिए ब्रह्म का विवर्तभूत जगत् मिथ्या है यह जानकर के विद्वान् वैराग्य को धारण करते हुए मोक्ष के लिए श्रवणमननिदिध्यासनो में निरन्तर निरत हो जाते हैं, इस प्रकार से यह शास्त्रों में प्रतिपादित किया गया है।

पाठान्त प्रश्न

1. किसलिए सभी जगहों पर ब्रह्म की सत्ता अनुवर्तित होती है?
2. रजत के भ्रम काल में किस प्रकार से देशान्तरीय रजत का भान होता है?
3. स्वप्न तथा जगत की प्रतीति में दोष रूप से क्या होता है?

ध्यान दें:

4. अद्वैत वेदान्त में ज्ञानस्थल में विषयाकार वृत्ति किसलिए अङ्गीकार की गई है?
5. प्रथम जगत की उत्पत्ति किसलिए स्वीकार नहीं की गई है?
6. यह रजत है इस प्रकार का ज्ञान होने पर देशान्तरस्थ रजत प्रतिभासित नहीं होता है, यहाँ पर कौन सा हेतु है?
7. शुक्ति में रजत सत् है अथवा असत् यह कहाँ पर स्वीकार नहीं किया गया है?
8. ख्याति पद की व्युत्पत्ति लिखिए?
9. बौद्धों के शास्त्र में आत्मा किसे कहते हैं?
10. प्राभाकरमीमांसक यह रजत है इस प्रकार के ज्ञान में रजत किसका अंश होता है?
11. सिद्धान्तलेश के द्वारा कहा गया परिणाम तथा विवर्त का दूसरा लक्षण क्या है?
12. कारणसलक्षणोऽन्यथाभावः परिणामः, कारणविलक्षणोऽन्यथाभावो विवर्तः यहाँ पर कौन से उदाहरण है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 14.1

1. प्रमा का लक्षण ही अनधिगताबाधितार्थविषयज्ञानत्व से युक्त होता है।
2. घटादिविषयावच्छिन्न चैतन्य ही विषय चैतन्य होता है।
3. अन्तः करणवृत्यवच्छिन्न चैतन्य ही प्रमाण चैतन्य है।
4. अन्तः करणावच्छिन्न चैतन्य ही प्रमातृ चैतन्य है।
5. शुक्ति से रजत की उत्पत्ति में काचकमलादि इन्द्रिय दोष होते हैं।
6. आगन्तुकदोषजन्यत्व प्रातिभासिकत्व में नियामक होते हैं।
7. यह रजत है इस प्रकार का ज्ञान होने पर यह शुक्ति के सामान्यांश का निर्देश करता है।
8. भ्रमभूत रजत के साथ तादात्म्य से प्रतीयमान उसका मिथ्यात्व कहलाता है।
9. काचकामलादिलोचनदोषकारण से शुक्ति के शुक्तित्व तथा नीलपृष्ठत्वादियों के विशेष अंशो का ज्ञान होता है।
10. विषयचैतन्यावरक के ज्ञान के लिए विषयाकार अन्तः करण की वृत्ति अपेक्षित है।
11. अविद्या जब रजत संस्कार के साथ होती है तब रजत का आरोप होता है, जब रङ्ग के साथ होती तब रङ्ग का आरोप होता है।

ध्यान दें:

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 14.2

1. आगन्तुकदोष, संस्कार, अधिष्ठान सामान्य ज्ञान, सादृश्य अविद्या इत्यादि हेतु रूप में होते हैं।
2. अविद्या ही अध्यस्त वस्तु की उपादान होती है।
3. आगन्तुकदोष संस्कारादि अध्यस्तवस्तु के निमित्त कारण होते हैं।
4. जिससे कार्य की उत्पत्ति होती है तथा कार्य के नाश हो जाने पर कार्य का लय जहाँ पर होता है, वह उपादान कारण कहलाता है।
5. सभी प्रकार के कार्य उस उपादानकारण अविद्या के अधिष्ठान ब्रह्म में आश्रित होकर रुकते हैं।
6. जिन अध्यासों का बाध शुक्तित्वादि के विशेष दर्शन के द्वारा होता है उन अध्यासों में सादृश्यज्ञान कारण होता है।
7. अद्वैत वेदान्त के मत में आरोपित वस्तु ही अनिर्वचनीय अविद्या तत्कालोत्पन्न अभिनव होती है।
8. ब्रह्म में प्रपञ्चाध्यास में सादृश्य हेतु नहीं होता है।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 14.3

1. ख्याति शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ ज्ञान होता है। भ्रमज्ञान इसका रूढ़ प्रयोग होता है।
2. सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार तथा आत्मख्यातिवादी
3. प्राभाकरमीमांसक असत्ख्यातिवादी कहलाते है।
4. शून्यवादी बौद्ध असत्ख्यातिवादी कहलाते है।
5. अनिर्वचयीयख्याति इस नाम के द्वारा प्रसिद्ध है।
6. भाट्टनैयायिक अन्यथा ख्यातिवाद को अङ्गीकार करते हैं।
7. विपरीतख्याति।
8. सत्ख्याति।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर 14.4

1. शुक्तिर्ि वषयक अज्ञान ही शुक्ति रजत का परिणामी उपादान होता है तथा शुक्त्यवच्छिन्न चैतन्य ही विवर्तोपादन होता है।
2. सतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा इति परिणामलक्षणं तेन प्रतिपादितम्।
3. अतत्त्वतोऽन्यथाप्रथा यह विवर्त का लक्षण सदानन्द योगीन्द्र के द्वारा कहा गया है।
4. उपादानसमसत्ताककार्यापत्ति परिणाम होता है, विवर्त उपादानविषमसत्ताककार्यापत्ति वाला होता है।
5. पारमार्थिक सत्ता का लक्षण कालत्रय बाध्यत्व होता है। ब्रह्म की ही पारमार्थिक सत्ता है।

ध्यान दें:

6. ब्रह्मज्ञान इतर ज्ञान का बाध्यत्व वाला होता है, इस प्रकार से यह व्यावहारिक सत्ता का लक्षण है।

7. ब्रह्मज्ञानेतरज्ञानबाध्यत्व यह प्रातिभासिक सत्ता का लक्षण है।

8. अद्वैतवाद में जगत की सत्ता को आधार मानकर के अजातवाद, दृष्टि सृष्टिवाद तथा सृष्टि दृष्टि वाद इस प्रकार से तीन वाद प्रसिद्ध हैं।

9. वस्तुनस्तत्समसत्ताकोऽन्यथाभावः परिणामः, तदसमसत्ता को विवर्त इति।